रुखसार

स्मिति

मैं प्राथमिक विद्यालय में टहलते हुए कक्षाओं को बाहर से देख रही हूँ। मेरी वरिष्ठ, पारुल, मुझसे कहती हैं कि मैं चाहूँ तो कक्षाओं में बच्चों से बातें कर आऊँ, तब तक वे अन्य चीज़ें देख-सुन लेंगी। मैं हामी भरते हुए सिर हिलाती हूँ। कक्षाओं को देखती हूँ तो मन हिचकता भी है और उत्सुक भी होता है। मैं पारुल से कहती हूँ कि सरकारी स्कूलों में शायद एक खास तरह की खुशबू होती है, मुझे यह महक मेरी माँ के स्कूल से याद है। घास और बच्चों की मिली-जुली गन्ध, महक के साथ एक खास तरह का व्यवस्थित शोर, जो एक कड़क मास्टर के कक्षा में घुसते ही शान्ति में तब्दील हो जाता है।

विद्या भवन एजुकेशन रिसोर्स सेंटर (ईआरसी) में पिछला करीबन एक महीना उन्हीं वर्कबुक पर काम किया है जो यहाँ के बच्चों के लिए परिकल्पित की गई हैं। मैं अँग्रेज़ी टीम में काम करती रही हूँ और अक्सर असहज महसूस करती रही हूँ, लगातार स्वयं से यह प्रश्न पूछते हुए कि क्या खुद को इतना आता भी है कि बच्चों को सिखाने के लिए लिख पाऊँ! पर फिर सोचती हूँ, यह प्रक्रिया सिखाने की कम और सीखने की ज़्यादा है।

कुछ चिन्ताएँ

मैं कक्षा ग्यारहवीं में जाती हूँ। इन बच्चों ने पिछले साल विद्या भवन ईआरसी द्वारा बनाई गई दसवीं की वर्कबुक पढ़ी है। बच्चों को वर्कबुक के कुछ-कुछ हिस्से बखूबी याद हैं। पर उससे कहीं ज़्यादा अच्छे से याद हैं – तोषी मैम। तोषी मैम ने कुछ निजी कारणों से, फिलहाल के लिए, पढ़ाना छोड़ दिया है। “वे समझाती थीं तो सब समझ में आता था; कक्षा में घूम-घूमकर पढ़ाती थीं; अँग्रेज़ी अच्छी लगती है...” बच्चे बोलते जा रहे हैं।

पूछने पर कि क्या उन्हें कहानियाँ पढ़ना पसन्द है, लड़कियाँ और लड़के बिलकुल अलग जवाब देते हैं। लड़के कहते हैं कि अतिरिक्त किताबें पढ़ना उन्हें पसन्द नहीं, अपनी कोर्स वाली ही पढ़ लें तो बहुत है। लड़कियाँ बताती हैं कि पिछली कक्षाओं में पीछे रखी रहने वाली किताबें (यानी, पाठ्यक्रम के अतिरिक्त किताबें) वे काफी उलटती-पुलटती थीं। पहेलियाँ और चुटकुले तो खूब पसन्द थे। फिर लड़कों की लगभग चुगली करते हुए वे आगे बताती हैं, “इनका मन तो इंस्टाग्राम में लगता है। ये थोड़े ही किताब पढ़ेंगे!”

मैं कुछ कहती नहीं हूँ, पर सोचती

हूँ – क्या शिक्षाविद डिजिटलाइज़ेशन की वजह से आने वाली चुनौतियों के लिए तैयार हैं? क्या बच्चों की छोटी होती जा रही ध्यान-अवधि की समस्या को हम सुलझा पाएँगे? लौटते हुए, जब मैं पारुल से यह विचार साझा करती हूँ, तो वे मेरी चिन्ताओं से सहमत होती हैं, और निजी अनुभवों से बताती हैं कि बच्चों को फोन से दूर रखना समय के साथ और भी कठिन होता जा रहा है।

प्यार और होशियारी

इन सब बातों के बीच सबसे अटकती और खटकती कहानी है रुखसार की। मैं जब सातवीं कक्षा के बच्चों से बात करने पहुँची, और उन्हें साँप के मुँह और पूँछ के उदाहरण से अँग्रेज़ी वाक्यों में कैपिटलाइज़ेशन और फुल स्टॉप समझाना चाह रही थी, तो मध्याह्न की घण्टी बज गई। मैं बच्चों के साथ ही बाहर निकल आई। वे सब कतार में मध्याह्न भोजन के लिए बैठे, तो मैं भी बरामदे में उनके सामने ही बैठ गई। एक-दो बच्चों ने पूछा कि क्या वे मेरे लिए कुर्सी ले आएँ, तो मैंने भी उनसे पूछा कि फिर मैं उन्हें आमने-सामने देखकर बात कैसे कर सकूँगी, और उन्हें सुनूँगी कैसे। तो वे हँसते हुए वापस बैठ गए। मुझसे खाने को भी पूछा।

इतने में छोटी-सी दिखने वाली रुखसार मेरे बिलकुल बगल में बैठ गई, अपना गुलाबी टिफिन लेकर। रुखसार ने मुझसे बमुश्किल तीन मिनट बात करने के बाद कहा कि मैं उसे अच्छी लगी। हमारे परिचय की लघुता को समझते हुए, मैंने उसकी बात को अधिक गम्भीरता से तो नहीं लिया, पर शुक्रिया कहा। उसके बाद रुखसार ने मुझे बताया कि उसकी माँ नहीं है, और वह अपनी दादी के साथ रहती है। उसके पिता ने दूसरी शादी कर ली है और उनकी पत्नी हिन्दू है। वे शहर में रहते हैं। उसका भाई आठवीं कक्षा पास करने के बाद से काम करता है, और अब प्राइवेट से एक्ज़ाम देगा। उसे दादी के भाई, मुमानी, चाचू - सब तरह के रिश्तों का ठीक-ठाक ज्ञान था। और रुखसार जब बोल रही थी तो बेहद धीमे और ज़रा ठहर-ठहरकर बोल रही थी। जब थोड़ा-बहुत बोल चुकी तो आँखों में आए आँसू पोंछकर बोली, "मुझसे कोई प्यार से बात करता है तो मुझे रोना आ जाता है।"

मैं उस वक्त रुखसार को चुप कराने के लिए भी कुछ नहीं बोल सकी। मैं उस दस-ग्यारह वर्षीय बच्ची को दया का पात्र नहीं बनाना चाहती थी। वह दया का पात्र थी भी नहीं। रुखसार को पता था कि वह कहानियाँ पढ़ना चाहती है, अँग्रेज़ी पढ़ना सीखना चाहती है, भले ही अभी वह अक्षरों से अधिक कुछ नहीं पढ़ पाती है। उसकी कक्षा के बाकी बच्चों से बात करने पर मालूम हुआ, उनके बीच होशियार और गैर-

होशियार बच्चों के नाम पर बँटवारा हो चुका है। और गैर-होशियार बच्चों की लिस्ट में भी रुखसार बहुत नीचे थी।

'होशियार' बच्चों से थोड़ी बातचीत करके पता चला कि किसी को घर पर दीदी पढ़ाती हैं, तो किसी को अंकल। रुखसार के घर पर वैसा कोई नहीं है जो उसकी पढ़ाई-लिखाई पर बराबर ध्यान दे सके। रुखसार जो खुद से सीख सकती थी, उसका अधिकांश उसने सीख लिया था: दुनियावी रिश्ते-नाते, हिन्दू-मुस्लिम का मोटा-मोटा फर्क, पिता के नए परिवार के बरक्स अपनी स्थिति, नए लोगों से बात करने की प्रतिभा आदि और पता नहीं क्या-क्या। पढ़ाई को लेकर अपने निजी अवरोधों और क्षमताओं के बारे में तो उसे ठीक-ठाक पता था ही, और-तो-और, उसने मुझे यह भी एहतियात दी कि सफेद पजामा पहने हुए मुझे ज़मीन पर नहीं बैठना चाहिए।

रुखसार की सारी क्षमताएँ हमारे द्वारा लिए जाने वाले 'बेसलाइन टेस्ट' और 'अचीवमेंट टेस्ट' में दर्ज़ नहीं हो पाएँगी। रुखसार शायद उन टेस्ट में 'फेल' करार कर दी जाएगी, 'होशियार' बच्चे पास हो जाएँगे। इन सबसे पहले और परे, मैं याद रखना चाहूँगी कि एक छोटी बच्ची जिसका नाम रुखसार था, उसने मुझसे पूछा था कि क्या अब मैं वहीं पढ़ाऊँगी, और मेरे 'नहीं' कहने पर पूछा था कि मैं फिर वहाँ कब आऊँगी। मैंने उससे कहा था कि शायद फिर वहाँ न आ सकूँ। पर वह मुझे चिट्ठियाँ लिख सकती है, और हमारे साथियों के हाथों मुझे वे चिट्ठियाँ भिजवा सकती है। और जब तक कुछ लिखना न सीख जाए, मुझे चित्र बनाकर दे सकती है। मैं प्रार्थना करने लगी कि पूरी ईमानदारी से रुखसार की चिट्ठी आने का इन्तज़ार करूँगी, पहले चित्र वाली फिर शब्दों वाली। यह जानते हुए कि शायद कल सुबह तक रुखसार मुझे भूल जाएगी। यह जानते हुए कि मैं जब तक यहाँ काम करूँगी, मुझे रुखसार जैसे बच्चों को याद रखना है।

स्मिति: जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से भाषा विज्ञान में पीएच.डी. कर रही हैं। शिक्षा, शिक्षा की भाषा, और बहुभाषीय शिक्षण जैसे विषयों में खास रुचि है। बच्चों की भाषा, स्कूल में उनके सन्दर्भों के लिए जगह, कक्षा में एकाधिक भाषाओं की सम्भावना, आदि के बारे में बहुत कुछ जानना और समझना चाहती हैं।

यह लेख विद्या भवन एजुकेशन रिसोर्स सेंटर द्वारा संचालित हिन्दुस्तान ज़िंक की परियोजना 'शिक्षा सम्बल कार्यक्रम' के अनुभव के आधार पर लिखा गया था।